SAMIKHIYA A Multidisciplinary Research Journal
ISSN:2583-827X (Online), Vol. 1, Issue 01, Oct.-2022, pp.27-36
Available at: https://journal.mscw.ac.in/Research_Journal/mscw_Journal.aspx

संस्कृत साहित्य में मानववाद

पूजा मिश्रा

सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग,
माता सुन्दरी महिला महाविद्यालय,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली-110002
M.8527559137
Email: mishra.pooja805@gmail.com

शोधपत्र-सारांश

मानववाद चिन्तन की एक महत्त्वपूर्ण प्रणाली है, जिसमें मानव की प्रतिष्ठा सर्वश्रेष्ठ सत्ता के रूप में की गयी है। मानववाद यदि मानव को सर्वोच्च सत्ता के रूप में स्थापित करने वाला दर्शन है, तो यह कार्य सर्वाधिक पूर्णता के साथ संस्कृत साहित्य में किया गया है। अद्वैतवाद ब्रह्मवेत्ता मानव को ब्रह्म मानता है तथा यह मानव की श्रेष्ठतम अवस्था है। यह बात सामान्यतया प्रचलित मानववाद में अप्रचलित एवं अटपटी लगती है, किन्तु इस प्रश्न पर विचार करने पर कि मानव क्या है? ये अटपटापन समाप्त होने लगता है। मानव शरीर है या आत्मा, मानव सत्ता भौतिक है या आध्यात्मिक सत्ता? इन प्रश्नों पर सम्यक विचार कर पण्डित दीनदयाल उपाध्याय ने एकात्ममानवदर्शन प्रतिपादित किया।

एकात्ममानववाद भारत की प्राचीन दार्शनिक परम्परा के वैचारिक अधिष्ठान से प्रस्फुटित एक क्रान्तिकारी विचारधारा है जिसके बीज भारतीय परम्परा में वेदों, उपनिषदों एवं भगवद्गीता में देखे जा सकते हैं। इस शोध-पत्र का उद्देश्य संस्कृत साहित्य में व्याप्त इन्हीं मानववाद सम्बन्धी विचारों का संकलन करते हुए उपाध्याय जी के एकात्ममानव दर्शन की मुख्य प्रवृत्तियों का विश्लेषण करना है।

SAMIKHIYA A Multidisciplinary Research Journal
ISSN:2583-827X (Online), Vol. 1, Issue 01, Oct.-2022, pp.27-36
Available at: https://journal.mscw.ac.in/Research_Journal/mscw_Journal.aspx

संस्कृत साहित्य में मानववाद

क्या बाजारवाद (पूँजीवाद) तथा राज्यवाद (साम्यवाद) विचारधाराएँ आधुनिक मानव को आन्तरिक सुख दिला सकती हैं ? क्या भारतवासी पश्चिमी अवधारणाओं के अनुसार ही जीवन जीने को अभिशप्त हैं ? क्या भारतीय मनीषा के पास इसका कोई समाधान नहीं है ? एकात्ममानववाद के रूप में पण्डित दीनदयाल उपाध्याय ने इन प्रश्नों का दार्शनिक समाधान किया है।

एकात्म मानववाद कोई नवीन विचारधारा नहीं है, वरन इसकी पृष्ठभूमि के दो आयाम हैं: भारतीय संस्कृति तथा पाश्चात्य जीवनदर्शन। मानववाद मुख्यतः पाश्चात्य अवधारणा है तथा एकात्मता भारतीय। अतः कहा जा सकता है कि एकात्म मानववाद भारत की प्राचीन दार्शनिक परम्परा के वैचारिक अधिष्ठान से प्रस्फुटित एक क्रान्तिकारी विचारधारा है जिसके बीज भारतीय परम्परा में वेदों, उपनिषदों एवं भगवद्गीता में देखे जा सकते हैं। वस्तुतः एकात्ममानववाद की प्रवृत्तियाँ मूलतः एकात्मता, समग्रता, पूरकता तथा आत्मीयता के भावों में निहित हैं, जिनकी तलाश प्राचीन संस्कृत साहित्य में की जा सकती है।

क) एकात्मता

एकात्ममानववाद का केंन्द्रीय विचार है कि जीवन समग्र है। यह जीवन को खण्ड-खण्ड में बाँटकर पुनः उन खण्डों को एक में जोड़ने की पद्धति नहीं है। समस्त विभिन्नताओं और विविधताओं के पीछे एक एकात्मता है। एकात्मता भारतीय दर्शन की आधारभूत मान्यता है। इसके अनुसार "यत् पिण्डे तत् ब्रह्माण्डे" (जो पिण्ड में है वही ब्रह्माण्ड में है)। अंश और सम्पूर्ण, तत्वतः एक हैं। अर्थात् समस्त विश्व-ब्रह्माण्ड में एक ही चेतना व्याप्त है। व्यक्ति चेतना से ब्रह्माण्ड चेतना तक उसका एक ही स्वरूप है। एक ही परम सत्य की अभिव्यक्ति है संपूर्ण विश्व-

ISSN:2583-827X (Online), Vol. 1, Issue 01, Oct.-2022, pp.27-36
Available at: https://journal.mscw.ac.in/Research_Journal/mscw_Journal.aspx

ब्रह्माण्ड जिसके अंदर एक आंतरिक एकात्मता है। एकात्मता की इस अवधारणा का बीज ऋग्वेद के पुरुष सूक्त और नासदीय सूक्त में दिखायी पड़ता है। पुरुष सूक्त के अनुसार, "पृथ्वी, स्वर्ग, ग्रह, नक्षत्र, चेतन, अचेतन सभी पदार्थ एक ऐसे पुरुष के अंश हैं जो सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त भी है और उसके बाहर भी; अर्थात् विश्वव्यापी एवं विश्वातीत दोनों है। जो कुछ है और जो कुछ होगा सभी एक ही तत्त्व में अन्तर्भूत है।[1] ऋग्वेद के नासदीय सूक्त में एकवादी विचारधारा का मूल दिखायी पड़ता है। इस सूक्त में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति एक मूल कारण से बतायी गई "उस समय न सत् था और न असत्, पृथ्वी भी नहीं थी, आकाश भी नहीं था तथा न उससे ऊपर व्योम। आवरण भी कहाँ था ?... उस समय मृत्यु भी नहीं थी, अमरता भी नहीं थी। रात और दिन का भेद नहीं था। वायु, शून्य और श्वास-प्रश्वासयुक्त केवल ब्रह्म ही था। उसके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं था"।[2]

वेद वाङ्गमय के ही सारभूत विचार, जिसे वेदांत कहते हैं, ऐसे उपनिषदों ने सम्पूर्ण सृष्टि की एकात्मकता का प्रतिपादन किया है। "सर्वं खल्विदं ब्रह्म, नेह नानास्ति काञ्चन"[3] अर्थात् सृष्टि के रूप में प्रतीत होने वाला संपूर्ण दृश्य केवल ब्रह्म का ही आविष्कार है। इसमें प्रतीत होने वाली विविधता एक ही शक्ति का विलास है। इस सिद्धान्त को पंडितजी ने सीधे अपने शब्दों में अनूदित किया है। विस्तृत होने पर भी पश्चिमी दर्शन और एकात्म मानव दर्शन की मौलिक भिन्नता जानने के लिए यह परिच्छेद पठनीय है -

---

[1] सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात.....
स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठदशाङ्गुलम् ।। ऋग्वेद पुरुषसूक्त-10.90

[2] नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परोयत्।
किमावरीवः कुह कस्य शर्मन्नम्भः किमासीद गहनं गभीरम् ।।
न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि न रात्र्या अह्न् आसीतप्रकेतः।
आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्न परः किं चनास ।। ऋग्वेद, नासदीयसूक्त-10.129

[3] बृ. 4.41.19

ISSN:2583-827X (Online), Vol. 1, Issue 01, Oct.-2022, pp.27-36
Available at: https://journal.mscw.ac.in/Research_Journal/mscw_Journal.aspx

"इस प्रकार हमारी प्रकृति ब्रह्मनिष्ठ है, जिनको हम देख नहीं पाते, ऐसे सबको-सम्पूर्ण सृष्टि को-केन्द्र मानकर चलते हैं। हम इस केन्द्र की ओर चलते हैं, वे बाहर की ओर चलते हैं। केन्द्र की ओर चलने से हम केन्द्र के निकट आते हैं। वहाँ जितने व्यक्ति उतने ही केन्द्र हैं, वे केन्द्र से बाहर चलते हैं। अतः केन्द्र से दूर चले जाते हैं। हमारे यहाँ केन्द्र ईश्वर, आत्मा, ब्रह्म कुछ भी कहें- है। इसलिए हम सब में एक आत्मा मानते हैं। पश्चिम वाले सब को यन्त्रवत् मानते हैं, समाज भी उनके लिए एक यंत्र है। हम समाज, राज्य, राष्ट्र सब में ईश्वर या चैतन्य मानते हैं। इस सम्पूर्ण विश्व में एक चैतन्य की कल्पना करते हैं-ईश्वर सब में मौजूद है। हम आत्मवादी हैं, वे अनात्मवादी हैं, जड़वादी हैं। हम समाज राष्ट्र को भी आत्म-ईश्वर का रूप मानकर चलते हैं, वे केवल यंत्रवत् राष्ट्र की कल्पना लेकर चलते हैं।"[4]

ईशावस्य उपनिषद् के आरम्भ में ही "ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्"[5], तथा अन्य उपनिषदों में- "आत्मैवेदं सर्वम्"[6] में तथा "सर्वं खल्विदं ब्रह्म"[7] - भी यही बात कही गयी है। अर्थात् इस अखिल सृष्टि में ब्रह्म से लेकर चींटी तक जो कुछ भी है ईश्वरमय अथवा ब्रह्ममय ही है। ईशोपनिषद में आगे भी यह पुनः स्पष्ट किया गया है कि सम्पूर्ण अस्तित्व एक ही चैतन्यशक्ति का विलास है। दो तत्त्वों का अस्तित्व ही नहीं है। सब कुछ मुझमें है और सब मैं ही हूँ, यही पूर्ण ज्ञान है -

यस्तु सर्वाणि भूतानि आत्मन्येवानुपश्यति,

---

[4] दीनदयाल उपाध्याय, संपूर्ण वाङ्मय, खण्ड11, पृ.16
[5] ईशावस्योपनिषद मंत्र,1
[6] छान्दोग्योपनिषद 7.25.2
[7] वही. 6.114.1

ISSN:2583-827X (Online), Vol. 1, Issue 01, Oct.-2022, pp.27-36
Available at: https://journal.mscw.ac.in/Research_Journal/mscw_Journal.aspx

सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते ।।[8]

उपनिषदों का यह अद्वैत ही एकात्म मानव दर्शन का मूल आधार है । और उपनिषदों का यह अद्वैत सिद्धान्त अद्यतन पदार्थ विज्ञान भी मान्य कर रहा है । जगद्विख्यात् नोबल पुरस्कार विजेता डॉ. फ्रिजाफ काप्रा अपने सुविख्यात ग्रन्थ The Tao of Physics में कहते हैं-

"The most important characteristic of the eastern world view is the basic oneness. All things are seen as interdependent and inseparable parts of the "cosmic whole", as different manifestations of the ultimate reality. As we study the various models of subatomic physics, we shall see that they express again and again, in different ways, the same insight that the constituents of matter and the basic phenomena involving them are interconnected, interrelated and interdependent; they cannot be understood as isolated entities but only as integrated part of the whole."[9]

[पूरब की दुनिया के दृष्टिकोण की सबसे महत्वपूर्ण विशिष्टता इसकी एकात्मता है। सभी चीजें एक-दूसरे पर निर्भर और "सम्पूर्ण" ब्रहमाण्ड के अविभाज्य अंश के रूप में देखी जाती हैं, एक ही परमसत्य के बहुविध प्रकटीकरण के रूप में । यदि हम सूक्ष्माणु भौतिकी के विभिन्न प्रारूपों का अध्ययन करें तो हम बार-बार और अलग-अलग ढंग से उसी अंतर्दृष्टि को प्रकट होते देख सकते हैं कि द्रव्य के घटक और उनकी भागीदारी वाली मूलभूत घटना सभी परस्पर संबद्ध, परस्पर सम्बन्धित और एक-दूसरे पर निर्भर हैं । उन्हें अलग-अलग घटकों के रूप में नहीं, बल्कि सम्पूर्ण और उसके अविभाज्य अंश के रूप में ही समझा जा सकता है ।]

ख) समग्रता

प्रकृति का अर्थ ही है "सन्तुलित समग्रता" । तात्कालिक कारणों से किसी एक आयाम का आग्रह करना तथा अन्य आयामों की उपेक्षा करना, दूरगामी दृष्टि से असन्तुलन उत्पन्न

[8] ईशावास्योपनिषद्, मन्त्र 6
[9] Tao of Physics, 10 The Unity of All Things

ISSN:2583-827X (Online), Vol. 1, Issue 01, Oct.-2022, pp.27-36
Available at: https://journal.mscw.ac.in/Research_Journal/mscw_Journal.aspx

करता है यथा, अपनी तात्कालिक (कागज, आवास, फर्नीचर व ईंधन) आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मनुष्य जंगल काटता है। इससे पर्यावरण में असन्तुलन आता है तथा सूखा, अतिवृष्टि ,भूमंडलीय तापन की समस्या उत्पन्न होती है। सुख का एकांगी व उपभोगवादी चिंतन समाज एवं व्यक्ति को शोषण की प्रेरणा देता है। शोषण की प्रवृत्ति समाज और प्रकृति, दोनों का उत्पीड़न करती है, पर्यावरण को बिगाड़ती है तथा भावी पीढियों के लिए कठिनाइयाँ उत्पन्न करती है। उपाध्याय जी कहते हैं "प्रकृति की सम्पदा अपार होते हुए भी उसकी मर्यादा है। अतः प्रकृति से उतना तथा इस प्रकार लें कि वह उस कमी को स्वयं पूरित कर ले"।[10] पश्चिम का उद्योगवाद, एकांगी होने के कारण ही यांत्रिक व अमानवीय होकर प्रकृति के लिए संहारक बन गया है। समग्रतावादी अर्थव्यवस्था प्रकृति के शोषण पर नहीं, पोषण पर अवलम्बित है। "प्रकृति का स्तन्य हमारे लिए जीवनदायी हो, ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए"।[11]

भारतीय सन्दर्भ में यह दृष्टिकोण वैदिक काल से ही दृष्टिगोचर होता है। अथर्ववेद के रुद्राष्टाध्यायी के ऋषि भगवान शिव से प्रार्थना करते हुए कहता है कि हमारी नदियाँ जल से परिपूर्ण हों, हमारी औषधियाँ मधुमती बनें, वन पेड़-पौधों से भरे हों तथा हमारी गायें मीठे दूध से युक्त हों। इस प्रार्थना में ऋषि सम्पूर्ण जड़-चेतन सृष्टि की स्वस्थता की कामना करता है, क्योंकि सम्पूर्ण सृष्टि की स्वस्थता में ही मानव की स्वस्थता भी सन्निहित है। भारतीय मनीषी भर्तृहरि का कथन -"न जातु कामाः कामानामुपभोगेन शान्तयो'- इस बात पर बल देता है कि हमें प्रकृति से आग्रहशील होना चाहिए और प्रकृति से उतना ही

[10] दीनदयाल उपाध्यायः कर्तृत्व एवं विचार,पृ. 428
[11] वही

ISSN:2583-827X (Online), Vol. 1, Issue 01, Oct.-2022, pp.27-36
Available at: https://journal.mscw.ac.in/Research_Journal/mscw_Journal.aspx

लेना चाहिए जितना हम उसे वापस कर सकें । अस्तु, संस्कृत साहित्य ही एकात्ममानववाद की समग्रता, संपोष्यता, संतुलन एवं संयमन की दृष्टि का आधार है।

ग) पूरकता

सृष्टि के अस्तित्व का कारण संघर्ष नहीं, वरन् "परस्परावलम्बन" व "पूरकता" है। वनस्पति और प्राणी, एक दूसरे की आवश्यकता को पूरा करते हुए ही जीवित रहते हैं । हमें आक्सीजन वनस्पतियों से मिलती है तथा वनस्पतियों को कार्बन डाइआक्साइड प्राणि जगत से प्राप्त होती है। उपाध्याय जी ने इसे स्पष्ट करते हुए कहा है-

"संसार में एकता का दर्शन कर, उसके विविध रूपों के बीच परस्पर पूरकता को पहचान कर, उसमें परस्परानुकूलता का विकास करना तथा उनका संस्कार करना संस्कृति है"। प्रकृति को ध्येय की सिद्धि के अनुकूल बनाना संस्कृति तथा प्रतिकूल बनाना विकृति है। संस्कृति, प्रकृति की अवहेलना नहीं, उसकी ओर दुर्लक्ष्य नहीं करती, बल्कि प्रकृति में जो भाव सृष्टि की धारणा करने वाले तथा उसको अधिक सुखमय एवं हितकर बनाने वाले हैं, उनको बढावा देकर दूसरी प्रवृत्ति की बाधा को रोकना, यही संस्कृति है"।

"माता भूमिः पुत्रोऽहंपृथिव्याः" अर्थात् 'यह भूमि माता है और मानव इस पृथ्वी का पुत्र है', इस भावना के साथ प्रकृति के साथ याचनापूर्वक कुछ प्राप्त करना तथा प्रत्युपकार के द्वारा प्रकृति को कुछ प्रदान करते रहना, यह प्राचीन भारतीय मान्यता थी। पुनश्च, ऋषि अश्वत्थ वृक्ष का आश्रय लेते हुये मुण्डकोपनिषद् में कहता है

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषष्वजाते।

ISSN:2583-827X (Online), Vol. 1, Issue 01, Oct.-2022, pp.27-36
Available at: https://journal.mscw.ac.in/Research_Journal/mscw_Journal.aspx

तयोरन्यः पिप्पलं स्वादत्ति अनश्नन्नन्यो अभिचाकशी ।।[12]

"अभिज्ञानशाकुन्तलम्"[13] में शकुन्तला वृक्षों को जल पिलाए बिना स्वयं जल नहीं ग्रहण करती, आभूषण पसन्द करते हुए भी स्नेहवश अपने अलंकरण के लिए पेडो के फूल नहीं तोड़ती, मृगी के नवजात शिशु की सेवा वह इसलिए करती है, क्योंकि मृगी प्रसव-काल में ही समाप्त हो गयी थी और शिशु अनाथ था। ऐसा लगता ही नहीं कि फूल-पत्तियाँ, मृग तथा शकुन्तला में कोई कोटिगत भेद है। सब कुछ एक सामञ्जस्य में आबद्ध दिखायी पड़ता है। इसका परिणाम यह है कि शकुन्तला के विदाई के समय वृक्ष उसे वल्कल आदि उपहार देते हैं, पीले पत्ते गिराकर आँसू बहाते हुए शोक व्यक्त करते हैं,[14] तथा मृगशावक उसका वस्त्र पकड़कर जाने से रोकता है। यह परस्परपूरकता का अद्भुत् चित्रण है। इस युग तक वह पूरकता एवं समग्रत की दृष्टि विद्यमान थी जिसे विकसित करने के लिए वर्तमान काल में उपाध्याय जी प्रयत्नशील दिखते हैं।

घ) आत्मीयता

एकात्ममानववाद की अन्तर्निहित प्रवृत्तियों में एकात्मता, समग्रता तथा पूरकता की विवेचना के पश्चात उपाध्याय जी आत्मीयता का विवेचन करते हैं। उनके मत में पश्चिम की बड़ी असफलता यह है कि वह "स्वतन्त्रता' व 'समानता' के दैवी भावों में समन्वय नहीं कर सका। वस्तुतः पश्चिम, अपने द्वारा ही घोषित तृतीय उद्घोष 'बंधुता' का कोई दर्शन उत्पन्न नहीं कर सका

---

[12] ऋग्वेद 1-164-20

[13] पातं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या
नादत्ते प्रियमण्डनाऽपि भवतां स्नेहेन या पल्लवम्।
आद्ये वः कुसुमप्रसूतिसमये यस्या भवत्युत्सवः
सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम् ।। अभिज्ञानशाकुन्तलम् 4/9

[14] उदगलितदर्भकवला मृग्यः परित्यक्तनर्तना मयूराः।
अपसृतपाण्डुपत्रा मुञ्चन्त्यश्रूणीव लताः ।। वही 4/12

ISSN:2583-827X (Online), Vol. 1, Issue 01, Oct.-2022, pp.27-36
Available at: https://journal.mscw.ac.in/Research_Journal/mscw_Journal.aspx

। बंधुता का आधार सहानुभूति व आत्मीयता होती है जो जड़वाद के आधार पर अनुभव नहीं की जा सकती। "स्वतंत्रता, समानता व बन्धुत्व एक ही तत्त्व में अन्तर्निहित हैं, जिसे आत्मीयता कहते हैं" ।[15] मानव की आध्यात्मिक चेतना ही उसे समग्रता व पूरकता की दृष्टि देती है। इस दृष्टि का चेतन तत्त्व है आत्मीयता। हम किसी का "पूरक" बन कर उस पर एहसान नहीं करते वरन् अपने "आत्मीयजन" के सहयोग का सुख प्राप्त करते हैं। 'सहानुभुति' मानवता का गुण है, आत्मीयता के कारण सहानुभूति होती है। इसी आत्मीयता के भावस्वरूप व्यक्ति का स्व-पर का भेद विगलित हो जाता है तथा वह सम्पूर्ण विश्व को अपना कुटुम्ब समझने लगता है।

अयं निजः परोवेति गणना लघुचेतसाम्।

उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥

वह सबके सुख, कल्याण एवं मुक्ति की कामना कर पाता है।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखभागभवेत्॥

इस प्रकार एकात्ममानववाद में "एकात्मता" केन्द्रीय प्रवृत्ति है। इसके विश्लेषण की निष्पत्ति के रूप में अन्य दो प्रवृत्तियों का जन्म हुआ। प्रथम है कि प्रकृति का एकात्मक चरित्र हमें "समग्रता" का संदेश देता है तथा एकांगिकता का निषेध करता है। "समग्रता" का संयोजन संघर्ष से नहीं, 'समन्वय से ही हो सकता है। दूसरी प्रवृत्ति है कि समन्वय का आधार परस्परपूरकता एवं आत्मीयता है। निश्चय ही मानववाद का ये विचार भारतीय परम्परा एवं संस्कृति की चिन्तनधारा से प्रभावित दिखाई देते हैं जिसे दीनदयाल जी स्वयं स्वीकार करते हैं।

[15] दीनदयाल उपाध्याय:कर्तृत्व एवं विचार, डॉ. महेश चन्द्र शर्मा, पृ.430

ISSN:2583-827X (Online), Vol. 1, Issue 01, Oct.-2022, pp.27-36
Available at: https://journal.mscw.ac.in/Research_Journal/mscw_Journal.aspx

मानववाद (एकात्म) के बीज किसी न किसी रूप में हमें वेद, उपनिषद एवं गीता में दृष्टिगत होते हैं, जिसकी युगानुरूप व्याख्या पं. जी ने की है। अस्तु, दीनदयाल उपाध्याय की मानववाद (एकात्म) की अवधारणा के दार्शनिक आधार के रूप में संस्कृत साहित्य को स्वीकार किया जाना चाहिए।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- अथर्ववेद, सायणभाष्य शंकर पाण्डुरंग पण्डित, मुंबई, 1895-98
- ईशादि नौ उपनिषद्, गीताप्रेस, गोरखपुर, दशम संस्करण, सं. 2040
- श्रीमद्भभगवद्गीता, गीताप्रेस गोरखपुर
- उपाध्याय, दीनदयाल, सम्पूर्ण वाङ्मय, सम्पादक डॉ. महेश चन्द्र शर्मा, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016
- मा. स. गोलवलकर, एकात्म मानवदर्शन, सुरुचि प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012
- नेने, विनायक वासुदेव, पंडित दीनदयाल उपाध्याय विचार दर्शन, सुरुचि प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015
- दुबे, डॉ. राकेश, एकात्ममानववादी शिक्षा दर्शन, विद्या भारती संस्कृति शिक्षा संस्थान, कुरुक्षेत्र, 2014
- डॉ. जटाशंकर, नैतिक दर्शन के विविध आयाम, श्री भुवनेश्वरी विद्या प्रतिष्ठान, इलाहाबाद, 2003
- द्विवेदी, डॉ.कपिलदेव,अभिज्ञानशाकुन्तलम्, रामनारायणलाल विजयकुमार, इलाहाबाद, 2004
- श्रीवास्तव्य,डॉ. सन्तनारायण,वेदान्तसारः, सुदर्शन प्रकाशन, गाजियाबाद,2005
- मसीह, डॉ. या., सामान्य धर्मदर्शन एवं दार्शनिक विश्लेषण, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2012